राजप्रश्नीय सूत्र

●श्री सुन्दरलाल जैन

द्वितीय उपांग राजप्रश्नीय सूत्र कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण आगम है। इसमें संगीतकला, नाट्यकला, वास्तुकला की रोचक जानकारी तो प्राप्त होती ही है, किन्तु मूलतः इसमें शरीर से भिन्न आत्मतत्त्व की संवाद-शैली में रोचक ढंग से सिद्धि की गई है। आगम के पूर्वार्द्ध में सूर्याभ देव द्वारा भगवान महावीर के दर्शन करने के साथ देव ऋद्धि, नाट्यविधि आदि का अलौकिक प्रदर्शन है, वहाँ इसके उत्तरार्द्ध में सूर्याभ देव के पूर्वभववर्ती जीव— राजा प्रदेशी की पार्श्वापत्य केशीकुमार श्रमण से आध्यात्मिक/दार्शनिक चर्चा है, जो राजा प्रदेशी के जीवन को परिवर्तित करने में निमित्त बनी। प्रस्तुत आलेख में संस्कृत व्याख्याता श्री सुन्दरलाल जी जैन ने इस चर्चा को संवाद के रूप में प्रस्तुत किया है, जो आत्म-तत्त्व के अस्तित्व की सिद्धि में युक्तियों से युक्त है।

—सम्पादक

आप्त वचन को आगम कहते हैं। स्थानकवासी जैन परम्परा में ३२ आगम मान्य हैं। इनमें आचारांग आदि ग्यारह अंग सूत्र, औपपातिक आदि बारह उपांग सूत्र, दशाश्रुत आदि चार छेद सूत्र, उत्तराध्ययन आदि चार मूल सूत्र एवं आवश्यक सूत्र की परिगणना की जाती है।

जिस प्रकार वैदिक साहित्य में प्रत्येक वेद से संबद्ध ब्राह्मण आदि ग्रंथ होते हैं, उसी प्रकार आचारांग आदि ग्यारह अंगों से संबद्ध उपांग होते हैं। राजप्रश्नीय सूत्र दूसरे अंगसूत्र सूत्रकृतांग से संबद्ध उपांग सूत्र है।

राजप्रश्नीय सूत्र कथा प्रधान आगम है। इस आगम में प्रश्नोत्तर के माध्यम से 'तत् जीव तत् शरीर वाद' का खण्डन कर ''जीव भिन्न है, शरीर भिन्न है'' इस भेद ज्ञान का मण्डन उपलब्ध होने से यह एक दार्शनिक आगम है। इस आगम में राजा प्रदेशी द्वारा केशी कुमार श्रमण से पूछे गये रोचक प्रश्नों एवं उनके समाधान का समावेश होने से इस सूत्र का नामकरण राजप्रश्नीय सूत्र किया गया है।

विषय वस्तु के आधार पर प्रस्तुत आगम को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। इसके पूर्वार्द्ध में प्रथम देवलोक के सूर्याभ नामक देव की देवऋद्धि, उसका भगवान महावीर के दर्शनार्थ अमलकप्पा नगरी में पदार्पण, भगवान की पर्युपासना कर देव माया से विभिन्न नाट्य विधियों एवं भगवान महावीर की जीवन झांकी का प्रदर्शन सम्मिलित है, तो इसके उत्तरार्द्ध में केशीकुमार श्रमण द्वारा चित्त सारथि को उपदेश देकर श्रमणोपासक बनाना तथा उसकी विनति पर श्वेताम्बिका नगरी पधारकर अधर्मी राजा प्रदेशी के साथ जीव के अस्तित्व, नास्तित्व पर चर्चा कर उसे श्रमणोपासक बनाने की घटना वर्णित है। राजा प्रदेशी का जीव ही मरकर प्रथम सौधर्म कल्प में सूर्याभ नामक देव रूप में उत्पन्न हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कथा का सार

अवसर्पिणी काल के चतुर्थ आरे में आमलकप्पा नामक नगरी थी जो कि पश्चिम विदेह में श्वेताम्बिका नगरी के समीप थी। उस नगरी के उत्तर पूर्व दिक् कोण में आम्रशालवन चैत्य था। उस नगरी में राजा सेय (श्वेत) राज्य करता था, जिसकी धारिणी नामक पटरानी थी।

उस आमलकप्पा नगरी में अपनी शिष्य सम्पदा सहित श्रमण भगवान् महावीर का पदार्पण हुआ, परिषद् वन्दना करने निकली, राजा सेय ने भी अनेक कौटुम्बिक पुरुषों के सहित सम्पूर्ण राजकीय वैभव के साथ भगवान के दर्शन एवं वन्दन के लिए आम्रशालवन चैत्य की ओर प्रस्थान किया, वहां भगवान महावीर के समवशरण के न अति दूर एवं न अति समीप राजचिह्न का परित्याग कर पाँच अभिगमपूर्वक भगवान महावीर के सम्मुख आकर तीन बार प्रदक्षिणा कर वंदन नमस्कार किया।

जब भगवान महावीर आमलकप्पा नगरी में विराजमान थे उस समय प्रथम सौधर्म नामक देवलोक के सूर्याभ विमान की सुधर्मा सभा में सूर्याभ सिंहासन पर दिव्य वैभव के साथ बैठे हुए सूर्याभ नामक देव ने अपने विपुल अवधिज्ञान से जम्बूद्वीप का निरीक्षण करते हुए आमलकप्पा नगरी के आम्रशालवन चैत्य में भगवान महावीर को अपने शिष्य समुदाय सहित विराजित देखा तो वह अत्यंत हर्षित हुआ, सिंहासन से उठा, उत्तरासंग करके विनयपूर्वक सात आठ कदम चला, फिर बायां घुटना ऊँचा कर विनय आसन से बैठकर नमोत्थुणं के पाठ से भगवान महावीर की स्तुति की। तब उस सूर्याभ देव के मन में भगवान महावीर के दर्शन करने का शुभ संकल्प उत्पन्न हुआ। उस सूर्याभ देव ने अपने आभियोगिक देवों को बुलाकर कहा कि तुम आमलकप्पा नगरी में जाकर भगवान महावीर के चारों ओर एक योजन त्रिज्या के क्षेत्र को देव रमण योग्य बनाकर मुझे सूचित करो।

यह कार्य सम्पन्न होने के पश्चात् सूर्याभ देव ने अभियोगिक देवों को विमान निर्माण का आदेश दिया। दिव्य विमान की रचना के समाचार पाकर सूर्याभ देव ने दिव्य उत्तर वैक्रिय रूप की विकुर्वणा की और अपने परिवार सहित चार अग्रमहिषियों एवं गंधर्व तथा नाट्य इन दो अनीकों को साथ लेकर उस दिव्य यान विमान पर पूर्व की ओर मुख करके आरूढ़ हुआ। तत्पश्चात् चार हजार सामानिक देव एवं अन्य देव--देवियां अपने लिये निश्चित स्थान पर विमान में बैठें।

उस विमान पर आरूढ वह सूर्याभ देव सौधर्म कल्प के निर्याण मार्ग से निकलकर एक लाख योजन प्रमाण वाली दिव्य देवगति से नीचे उतरकर नन्दीश्वर द्वीप में रतिकर पर्वत पर आया। वहाँ आकर उस दिव्य देव ऋद्धि को धीरे-धीरे संकुचित कर जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र की आमलकप्पा नगरी के आम्रशालवन चैत्य में, जहाँ श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वहाँ आया और भगवान की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा कर वंदन नमस्कार किया। तब भगवान महावीर ने कहा— हे सूर्याभ देव! यह जीत परम्परागत व्यवहार है। यह कृत्य है। भगवान महावीर ने उपस्थित परिषद् को धर्म देशना दी, परिषद् पुनः लौट गई।

तब सूर्याभ देव ने भगवान महावीर के सम्मुख जिज्ञासा प्रस्तुत की और पूछा कि—

भगवन्! मैं सूर्याभदेव भव्य हूँ या अभव्य, सम्यग्दृष्टि हूँ या मिथ्यादृष्टि, परित्त संसारी हूँ या अपरित्त संसारी, आराधक हूँ अथवा विराधक, चरम शरीरी हूँ या अचरमशरीरी? तब भगवान महावीर ने कहा— हे सूर्याभ! तुम भव्य, सम्यग्दृष्टि, परित्तसंसारी, आराधक एवं चरमशरीरी हो।

तदनन्तर उस सूर्याभ देव ने भगवान महावीर के समक्ष अपनी दिव्य शक्ति से अनेक प्रकार की नाट्य विधियों का अति सुन्दर प्रदर्शन किया एवं साथ ही भगवान महावीर के जीवन प्रसंगों का भी सुन्दर अभिनय किया।

सूर्याभ देव द्वारा प्रदर्शित नाट्य विधियों को देखकर गौतम स्वामी के मन में सूर्याभ देव के विषय में जिज्ञासा उत्पन्न हुई, उन्होंने भगवान महावीर से निवेदन किया—

हे भदन्त! इस सूर्याभ देव ने दिव्य देव ऋद्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देव प्रभाव कैसे प्राप्त किया? यह सूर्याभदेव पूर्वभव में कौन था?

तब भगवान महावीर ने गौतम की जिज्ञासा को शान्त करते हुए उसे संबोधित कर कहा—

हे गौतम! अवसर्पिणी काल के चतुर्थ आरे में केशी स्वामी के विचरने के समय इस जम्बूद्वीप के केकय—अर्द्ध नामक जनपद में सेयविया (श्वेताम्बिका) नाम की नगरी थी, उस नगरी का राजा प्रदेशी था। राजा प्रदेशी अधार्मिक राजा था, वह सदैव मारो, छेदन करो, भेदन करो, इस प्रकार की आज्ञा का प्रवर्तक था। उसके हाथ सदैव रक्त से सने रहते थे और वह साक्षात् पाप का अवतार था। उस राजा प्रदेशी की सूर्यकान्ता नाम की रानी तथा उस सूर्यकान्ता रानी का आत्मज सूर्यकान्त नामक राजकुमार था। वह सूर्यकान्त कुमार युवराज था, वह प्रदेशी के शासन की देखभाल स्वयं करता था।

उस प्रदेशी राजा का उम्र में बड़ा भाई एवं मित्र जैसा चित्त नामक सारथी था। वह चित्त सारथी कुशल राजनीतिज्ञ, राज्य प्रबंधन में कुशल तथा बुद्धिमान था। एक समय राजा प्रदेशी ने चित्त सारथी को कुणाल जनपद की राजधानी श्रावस्ती नगरी भेजा, क्योंकि श्रावस्ती नगरी का राजा जितशत्रु राजा प्रदेशी के अधीन था।

चित्त सारथी राजा की आज्ञा प्राप्त कर विपुल उपहारों सहित श्रावस्ती नगरी पहुँचा। वह जितशत्रु राजा से भेंट कर वहाँ की शासन व्यवस्था एवं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजव्यवहार को देखा और अनुभव किया। चित्त सारथी के श्रावस्ती नगरी में पहुँचने पर वहाँ चार ज्ञान के धारक, चौदह पूर्वों के ज्ञाता पार्श्वापत्य केशीकुमार नामक श्रमण पाँच सौ अणगारों के साथ ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए श्रावस्ती नगरी के बाहर कोष्ठक नामक चैत्य में स्थान की याचना कर अवग्रह ग्रहण कर संयम व तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। परिषद् धर्म कथा श्रवण करने को निकली, कर्णाकर्णी चित्तसारथी को भी ज्ञान हुआ कि कोष्ठक चैत्य में परम प्रतापी केशीकुमार नामक श्रमण का पदार्पण हुआ है। तब चित्त सारथी अत्यन्त हर्षित हुआ एवं केशीकुमार श्रमण के दर्शनार्थ निकला। वहाँ पहुँचकर केशीकुमार स्वामी को वंदन नमस्कार कर धर्मोपदेश सुनने की इच्छा से विनयपूर्वक उनकी पर्युपासना की।

तत्पश्चात् केशीकुमार श्रमण ने चित्त सारथी सहित उपस्थित परिषद् को चातुर्याम धर्म का उपदेश दिया। चित्त सारथी केशी कुमार श्रमण के धर्मोपदेश को सुनकर अत्यन्त हर्षित हुआ और उसने केशी कुमार श्रमण से श्रावक धर्म स्वीकार किया।

कुछ दिनों तक श्रावस्ती नगरी में रहकर केशी स्वामी के चरणों में चित्त सारथी ने सेयविया नगरी में पधारने हेतु विनती की, अति अनुनयभरी विनती को केशी श्रमण ने स्वीकार किया। चित्त सारथी हर्षित होता हुआ सेयविया नगरी पहुँचा तथा श्रद्धापूर्वक श्रावक धर्म का पालन करने लगा।

किसी समय केशीकुमार श्रमण श्रावस्ती नगरी से विहार कर सेयविया नगरी में पधारे। केशी कुमार श्रमण के सेयविया नगरी में पधारने पर परिषद् वंदन करने निकली, चित्त सारथी भी वंदना करने पहुँचा। वहाँ पहुँचकर केशी कुमार श्रमण को वंदन नमस्कार कर पर्युपासना करने लगा। धर्मोपदेश सुनने के पश्चात् चित्त सारथी ने केशी श्रमण से निवेदन किया–

''हे भदन्त! हमारा प्रदेशी राजा अधार्मिक एवं पापाचार में लिप्त है, वह अपने जनपद का पालन व रक्षण नहीं करता है, अतः आप राजा प्रदेशी को धर्म उपदेश देकर उसका कल्याण करें।''

केशी कुमार श्रमण ने कहा– ''राजा प्रदेशी जब श्रमण माहण के सम्मुख ही उपस्थित नहीं होता है तो हे चित्त! मैं राजा प्रदेशी को कैसे उपदेश दे सकूंगा।''

केशी स्वामी के कथन को सुनने बाद चित्त सारथी ने दूसरे दिन युक्तिपूर्वक राजा प्रदेशी को केशीकुमार श्रमण की सेवा में उपस्थित किया।

केशी कुमार श्रमण को दूर से देखकर राजा प्रदेशी ने चित्त से कहा - ''अज्ञानी ही अज्ञानी की उपासना करते हैं, परन्तु यह कौन पुरुष है जो जड़, मुंड, मूढ, अपंडित और अज्ञानी होते हुए भी श्री ह्रीं से सम्पन्न है, शारीरिक कान्ति से सुशोभित है?'' तब चित्त सारथी ने राजा प्रदेशी से कहा–

हे स्वामिन्! ये पार्श्वापत्य केशी नामक कुमार श्रमण है जो चार ज्ञान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पन्न हैं। तब राजा प्रदेशी चित्त सारथी सहित केशी कुमार श्रमण के समीप पहुँचा। केशीकुमार श्रमण एवं राजा प्रदेशी के बीच **'तत् जीव तत् शरीरवाद'** को लेकर जो रोचक संवाद हुआ उसका सार इस प्रकार है–

राजा– क्या आप जीव और शरीर को अलग मानते हैं?

मुनि– तुम मेरे चोर हो।

राजा– चौंककर, क्या मैं चोर हूँ? मैंने कभी किसी की चोरी नहीं की है।

मुनि– क्या तुम अपने राज्य में चुंगी न चुकाने वाले को चोर नहीं मानते हो?

(चतुर राजा ने तत्काल मुनि के अभिप्राय को समझकर यथोचित वंदना की और कहा)

राजा– मुनिराज! यहाँ बैठूँ?

मुनि– यह पृथ्वी तुम्हारे अधिकार में है।

(इस विचित्र एवं प्रभावशाली उत्तर को सुनकर राजा को पूर्ण विश्वास हो गया कि मुनिराज असाधारण हैं, मेरी शंका का समाधान अवश्य होगा)

राजा– क्या आप जीव और शरीर को अलग–अलग मानते हैं?

मुनि– हाँ! मृत्यु के पश्चात् शरीर में रहने वाला जीव अन्यत्र जाकर दूसरे शरीर को धारण करके पहले के पुण्य.पाप का फल भोगता है।

राजा– मेरे दादा बहुत पापी थे। आपके कथनानुसार वे नरक में गये होंगे और वहाँ दुःख भोगते होंगे। वे यहाँ आकर मुझसे कहते कि बेटा! पाप न कर, पाप करेगा तो मेरी तरह नरक में दुःख भोगेगा, तो मैं मानूँ कि जीव व शरीर भिन्न है।

मुनि– तुम अपनी सूर्यकान्ता रानी के साथ किसी पापी मनुष्य को व्यभिचार करते देखो तो क्या करोगे?

राजा– उसी समय और उसी जगह उसकी जान ले लूँ?

मुनि– कदाचित् वह पुरुष हाथ जोड़कर प्रार्थना करे कि राजन्! मुझे थोड़ी देर के लिए छुट्टी दीजिए। मैं अभी अपने लड़के को बताकर आता हूँ कि वह व्यभिचार करेगा तो मेरी तरह मारा जायेगा। तो क्या आप उस पापी को थोड़ी देर के लिए छोड़ दोगे?

राजा– ऐसा कौन मूर्ख होगा जो अपराधी के कहने का भरोसा कर ले।

मुनि– जब तुम एक पाप करने वाले को, अपनी ही राज्य सीमा के भीतर, जाकर आने की थोड़ी सी देर की छुट्टी नहीं दे सकते, तो अनेक पाप करने वाले तुम्हारे दादा को इतनी दूर आने की छुट्टी कैसे मिल सकती है?

राजा– ठीक है, किन्तु मेरी दादी धर्मी थी, उन्हें अवश्य स्वर्ग मिला होगा, वह यह बताने क्यों नहीं आती कि धर्म का फल उत्तम होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि– अगर कोई हरिजन तुम्हें अपनी दुर्गंधमय झोपड़ी में बुलाना चाहे तो क्या तुम जाना पसन्द करोगे?

राजा– आपका यह प्रश्न बड़ा विचित्र है। मैं राजा होकर अपवित्र दुर्गंधमय झोपड़ी में कैसे पैर रख सकता हूँ।

मुनि– तो तुम्हारी दादी स्वर्ग के अनुपम सुखों में मग्न है। दुर्गन्ध युक्त मनुष्य लोक जिसकी दुर्गन्ध ९०० योजन तक असर करती है, मे कैसे प्रवेश करेगी?

राजा– ठीक है। मैं दूसरा प्रश्न पूछता हूँ। एक बार मैंने एक अपराधी को लोहे की कोठी में बंद कर दिया। कोठी चारों ओर से बंद थी थोड़ी देर बाद कोठी खोलकर देखी तो अपराधी की मृत्यु हो चुकी थी। मगर उसके शरीर से मैंने जीव को निकलता नहीं देखा। अगर जीव अलग है तो वह कोठी से कैसे निकल गया?

मुनि– किसी गुफा का दरवाजा मजबूती से बंद करके कोई आदमी जोर से ढोल बजावे तो ढोल की आवाज बाहर आती है या नहीं?

राजा– आती है।

मुनि– इसी प्रकार देह रूपी गुफा में से जीव निकल जाता है, पर वह दृष्टिगोचर नहीं होता। परम ज्ञानी महात्मा ही अपने दिव्य ज्ञान से उसे जान-देख सकते हैं। (जीव अरूपी होने से इन्द्रियग्राह्य नहीं है)

राजा– मैंने एक चोर को प्राणरहित करके एक कोठी में बंद करवा दिया कोठी अच्छी तरह बंद थी। बहुत दिनों बाद कोठी को उघाड़कर देखा तो उस पुरुष के शरीर में असंख्य कृमि व्याप्त थे। बंद कोठी में कृमि कैसे घुसे?

मुनि– जिस प्रकार लोहे के ठोस गोले को आग में तपाया जाय तो उसमें चारों ओर जिस प्रकार अग्नि प्रवेश करती है, उसी प्रकार बंद कोठी में चोर के शरीर में जीव प्रवेश कर कीट रूप में उत्पन्न हुए

राजा– जीव सदा एक सरीखा रहता है या छोटा–बड़ा, कम–ज्यादा होता है?

मुनि– जीवात्मा स्वयं सदैव एक सा रहता है।

राजा– ऐसा है तो जवान आदमी के हाथ से एक साथ पाँच बाण छूट सकते हैं, उसी प्रकार वृद्ध आदमी के हाथ से पाँच बाण क्यों नहीं छूट सकते हैं?

मुनि– युवा व्यक्ति भी नवीन धनुष से पाँच बाण छोड़ने में समर्थ है लेकिन उसे पुराना धनुष दें तो वह पाँच बाण छोड़ने में असमर्थ होगा। वैसे ही युवा एवं वृद्ध आदमी के संबंध में जानना चाहिए।

राजा– युवा आदि जितना भार उठा सकता है, उतना वृद्ध व्यक्ति क्यों नहीं उठा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि– नवीन छींका जितना वजन सह सकता है उतना पुराना नहीं। यही बात जवान और बूढ़े के बोझ उठाने के संबंध में समझना चाहिए।

राजा– मैंने एक जीवित चोर को तुलवाया, फिर उसके गले में फांसी लगाकर उसके मर जाने पर तुलवाया, लेकिन उसका वजन पहले जितना ही था। यदि जीव और शरीर भिन्न–भिन्न हैं तो जीव के निकलने पर वजन घटना था।

मुनि– चमड़े की मशक में पहले हवा भर कर तौला जाय तथा फिर हवा निकालकर तोला जाय, दोनों बार तौल बराबर होता है। यही बात जीव के संबंध में समझना चाहिए।

राजा– मैंने एक चोर के टुकड़े–टुकड़े करके देखा तो कहीं भी जीव दिखाई नहीं दिया। फिर शरीर में जीव कहाँ रहता है?

मुनि– राजन्! तुम उस लकड़हारे के समान मालूम होते हो जो अरणि की लकड़ी में आग खोजने के लिए उस अरणि की लकड़ी के टुकड़े–टुकड़े कर देता है, लेकिन कहीं भी आग नहीं दिखाई देती है, वह नहीं जानता कि जब उस अरणि की दो लकड़ियों को परस्पर रगड़ा जाता है तो आग प्रकट होती है।

राजा– मुनिराज मेरी समझ में कुछ नहीं आता है। कोई प्रत्यक्ष उदाहरण देकर समझाइए कि शरीर भिन्न है, जीव भिन्न है।

मुनि– ठीक, सामने खड़े वृक्ष के पत्ते किसकी प्रेरणा से हिल रहे हैं?

राजा– हवा से।

मुनि– वह हवा कितनी बड़ी है व उसका रंग कैसा है?

राजा– हवा दिखाई नहीं देती है अतः आपके प्रश्न का उत्तर कैसे दिया जा सकता है?

मुनि– जब हवा दिखाई नहीं देती तो कैसे जाना कि हवा है?

राजा– पत्तों के हिलने से।

मुनि– तो उसी प्रकार शरीर के हिलने डुलने आदि क्रियाओं से जीव का अस्तित्व सिद्ध होता है।

राजा– मुनिराज! आप कहते हैं कि सब जीव सरीखे हैं तो चींटी छोटी और हाथी बड़ा कैसे हो सकता है?

मुनि– जैसे किसी दीपक को कटोरे से ढक दिया जाता है तो वह कटोरे जितनी जगह में प्रकाश करेगा और जब उसी दीपक को महल में रख दिया जाय तो महल के क्षेत्र को प्रकाशित करेगा, उसी प्रकार जीव छोटे या बड़े जिस किसी शरीर में रहता है वैसा ही आकार प्राप्त कर लेता है।

राजा– मुनिवर! आपका कथन सत्य है लेकिन मैं वंशानुक्रम से चले आ रहे अपने आग्रह को कैसे छोड़ दूं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि– यदि तुम नहीं छोड़ सकते तो तुम्हारी दशा भी उस लोह वणिक् जैसी होगी जिसने सर्वप्रथम प्राप्त होने वाली लोहे की खान से लोहे की गांठ बांध ली तथा आगे क्रमशः तांबा, चांदी, सोना तथा रत्नों की खानों के प्राप्त होने पर भी उसने मित्रों का कहना नहीं मानकर लोहे की गांठ का परित्याग नहीं किया। उसके मित्र पूर्व-पूर्व वस्तु का त्याग कर अन्त में प्राप्त रत्नों की गांठ बांधकर सुखी हुए और वह लोह वणिक् लोह का भार ढोकर अत्यन्त दुःखी हुआ। अतः तुम भी कदाग्रह रखकर अपने बाप–दादा का धर्म नहीं छोड़ोगे तो दुःखी होओगे।

मुनि केशीकुमार श्रमण का कथन सुनकर राजा प्रदेशी ने जैन धर्म अंगीकार किया। उसने अपने धन के चार विभाग कर एक भाग दान के लिए रख दिया और बेले–बेले की तपस्या करते हुए धर्माराधन में रत रहने लगा। केशी कुमार श्रमण वहाँ से विहार कर अन्यत्र चले गये। रानी सूर्यकांता ने काम-भोग से विमुख जानकर राजा प्रदेशी को मारने का षड्यंत्र रचा और उस प्रेय मार्ग की पथिका रानी सूर्यकान्ता ने अपने पति प्रदेशी राजा को तेरहवें बेले के पारणे के समय विष खिला दिया। विष दिये जाने की बात विदित हो जाने पर भी राजा ने समभाव नहीं त्यागा। समाधि भाव में शरीर का त्याग कर राजा प्रदेशी का वह जीव ही पहले देवलोक के सूर्याभ विमान में देवरूप में उत्पन्न हुआ है। वहाँ से च्यवकर वह महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य होगा और संयम धारण कर मोक्ष प्राप्त करेगा।

इस प्रकार "जीव भिन्न है, शरीर भिन्न है" इस दार्शनिक मान्यता का मण्डन करने वाला यह ग्रंथ सत्संगति के महत्त्व को प्रतिपादित करता है।

सूत्रकृतांग नामक दार्शनिक अंगसूत्र से संबद्ध यह कथाप्रधान आगम अपनी दार्शनिकता के लिए विशेष प्रसिद्ध है। पार्श्वनाथ की परम्परा के केशीकुमार श्रमण तथा अधर्मी राजा प्रदेशी के मध्य जीव के अस्तित्व एवं नास्तित्व पर हुआ रोचक संवाद इस आगम का प्राण है। केशी कुमार जैसे श्रेष्ठ मुनिराज का सान्निध्य पाकर राजा प्रदेशी ने अपने जीवन का उद्धार कर लिया। सूर्याभदेव के रूप में प्रथम देवलोक में दिव्य सुखों का उपभोग करने वाला वह प्रदेशी का जीव महाविदेह क्षेत्र में मानव भव प्राप्त कर जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त करेगा।

–व्याख्याता संस्कृत
सी–121, पुनर्वास कॉलोनी, पो. सागवाड़ा, जिला– डूंगरपुर (राज.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org